प्राचीन चित्रकला एवं धर्म पर तांत्रिक प्रभाव

डॉ0 अंजू चौधरी

एसो0 प्रोफे0, ललित कला विभाग मेरठ कॉलिज, मेरठ।

शोधपत्र का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

डॉ0 अंजू चौधरी,
''*प्राचीन चित्रकला एवं धर्म पर तांत्रिक प्रभावं*',
Artistic Narration 2017, Vol. VIII, No.1, pp. 100- 109
http://anubooks.com/?page_id=2325

सारांश

प्राचीन काल से ही भारतीय कला धर्म से अनुप्रणित हुई है। भारतीय कला की मूलभूत प्रेरणा धार्मिक है । भिन्न–2 धर्मो से प्रेरित हो कलाकारों ने कला की समय–2 पर सृजना की है। जिन्हें फिर बौद्ध कला, जैन कला, वैष्णव कला तथा तांत्रिक कला आदि नामों से जाना गया। तंत्र एक ऐसा अति प्राचीन धार्मिक एवं विस्तृत प्रत्यय रहा है, जो प्रत्येक धर्म में परिव्याप्त पाया जाता है क्योंकि प्रत्येक धर्म व मत ने तांत्रिक क्रिया कलापों, कर्मकाण्डों वे देवी–देवताओं को आत्मसात किया है। तांत्रिक साहित्य व धर्म की भांति तांत्रिक कला का क्षेत्र भी बहुत असीमित है, विभिन्न विद्वानों ने तंत्र के प्रसार और उसकी व्यापका को भारतीय धर्म और सम्प्रदायों की विभिन्न परम्पराओं में विद्यमान देखते हुए तदनु
सार उसका विवेचन प्रतिपादित किया है। तंत्र विद्या के आकार प्रधान या दृश्यमान चित्रों का अध्ययन मुख्य रूप से यंत्र रचना, देवप्रतिमाओं और विभिन्न योग–आसनों की मुद्राओं के चित्रों पर ही आधारित है और इन्हें ही एक विशेष कला परम्परा जानकर 'तांत्रिक कला' कहकहर अभिहित किया गया है। इसके अन्तर्गत तंत्र विधा द्वारा सिद्धियां प्राप्त करने हेतु जो ज्योमितीय अमूर्त रूप, प्राकृतिक चिन्ह जैसे कमल, सूर्य, चन्द्र आदि, मानवीय रूप जैसे मैथुनाकृतियां आदि, अन्य धार्मिक प्रतीक जैसे–स्वास्तिक, ऊँ0 चक्र, कलश, वृक्ष, पदम मीन, मिथुन, त्रिरन्त आदि प्राचीन भारत में चित्रित मिलते है, समस्त रूपाकर आते है।

मूल शब्द–*प्राचीन भारतीय तांत्रिक धर्म व कला, ज्योमितीय रूपाकार, प्रतीक व चिन्ह, मैथुनाकृतियां, बौद्ध धर्म व इसके ग्रंथ, तांत्रिक प्रभाव, जैन, वैष्णव, ब्राहम्ण, हिन्दू, जादूई, कृत्य, योग साधना, सिद्धि अष्टदल कमल, पद्धति, वेद, उपनिषद महायोगियों पंचमकार साधना, कर्मकाण्ड़ आदि।*

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय चित्रकला के इतिहास की दृष्टि से तंत्र कला की कोई स्वतंत्र शैली और परम्परा पहचान सकना सम्भव नहीं है क्योंकि समस्त धर्मो मतों यथा, बौद्ध, जैन, हिन्दू, वैष्णव, शैव आदि पर तथा समस्त प्राचीन कला शैलियों यथा–प्रागैतिहासिक चित्रकला, मध्य कला–बौद्ध, जैन, हिन्दू आदि, राजस्थानी व पहाडी आदि कला शैलियों में इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय कला की मूलभूत धारा में एक सुनिश्चित विकास क्रम दिखाई देता है जिसके अनुसार वह क्रमिक युगों में अपना शैलीगत उत्कर्ष प्राप्त करती है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय तंत्र कला शैली के पृथक से किसी निश्चित विकास क्रम के स्थान पर जहां तहां इसके प्रतीक चिन्ह व रूपाकार चित्रित दिखाई देते है जिसकी विस्तष्त व्याख्या शोध पत्र में की गई है।

भारत में तांत्रिक उपासना का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन है। न केवल साहित्यिक स्त्रोंतो से अपितु प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युगों की उपलब्ध पुरातत्व एवं कला सामग्री से भी उसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है। प्रागैतिहासिक शैलाश्रायों में मानवजीवन की लीला के अनेक आयाम चित्रों में मुखरित हुये है जिनमें जादू टोने की भावना से प्रेरित चित्रों में तंत्र दर्शन में वर्णित प्रतीक व चिन्ह अंकित मिलते है। पहाडगढ़ शैलाश्रयी चित्रों के लिये कहा गया है कि ये चित्र आर्य संस्कृति को शैव सम्प्रदाय से जोडते है। सूर्य पूजा के 8 प्रकार जिनमें आर्यो की आस्था थी इन शिलाश्रयों पर चित्रित मिले है। छः सो गुहाओं के इस वृहद्ध शिलाश्रयी तांत्रिक प्रतीकों व चिन्हों से युक्त चित्राकोष में रक्ताभ, पाण्डुर, नीलाभ, श्वेत, हरित और पीतवर्ण भी उसी आधार पर प्रयुक्त हुये प्रतीत होते है। इन चित्रों की ज्यामितीय आकृतियां जिनमें डमरूनुमा, तीलीनुमा मानवाकृतियां आगे आने वाली तांत्रिक प्रभाव युक्त कृतियों में दिखाई देती है।[1] रायगढ क्षेत्र में स्थित सिंघनपुर के शिलाश्रयों पर अंकित विविध प्रकार की प्रतीकात्मक आकृतियों में सूर्य का अंकन मिलता है। जिनमें निकलती रेखाओं से किरणे प्रदर्शित की गयी है। अमरनाथ दत्त ने 6 किरणें स्पष्ट और एक अस्पष्ट, इस प्रकार सात की संख्या पूरी मानकर सूर्य की सप्तश्वमयी वैदिक कल्पना, जो तंत्र दर्शन से प्रभावित थी का स्मरण उस प्रंसग में किया है। वास्तव में, यह सूर्य रूप तांत्रिक विचारधारा का दिग्दर्शन भी करता है।

मध्य प्रदेश में मन्दसौर जनपद के मोड़ी ग्राम के निकट तीस ऐसे शैल चित्राधार मिले है जिनकी छतों और भितियों पर लाल गेरूए वर्ण के तांत्रिक प्रभाव वाले चित्र अंकित मिले है यहां कुछ ज्योमितीय रेखाकृतियां भी प्राप्त हुई जो इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है जैसे–मण्डल के भीतर चतुर्भुजी स्वास्तिक तथा स्वास्तिक की बेल में निकला सर्वतोभद चिन्ह, अष्टदल कमल, जिसके भीतर चार जुडी हुई पीपल की पत्तियां दिखायी गयी है, आठ अरो वाला चक्र, सूर्य आदि जो सिन्धु घाटी की कला में भी दृष्टव्य है।[2] शिला चित्रों में वृक्ष पूजा के भी दृश्य अंकित है वृक्ष पूजा के साथ सर्प पूजा भी अनिवार्य मानी जाती है।[3] किन्तु भारतीय शिला चित्रों में सर्पपूजा का अभाव है। बनिया बेरी (पंचमढ़ी) गुफा के भीतर प्रवेश करते ही बायीं और की शिला भित्ति पर विशाल दृश्य स्वास्तिक पूजा को वयक्त करता है। बनियाबेरी में स्वास्तिक के अंकन के अतिरिक्त बायी भुजा के निकट कुछ लहरदार आकृतियां सर्प आकृतियां हो सकती है।[4] ये सभी ज्योमितीय रेखाकृतियां तत्कालीन मानव जीवन की धार्मिक, सांस्कृतिक वृत्तियों के प्रतीक

चित्र है। इनमें स्वास्तिक के विविध प्रकार दर्शाये गये है। स्वास्तिक के अबाहु (+) एवं सबाहु (卐) दोनों रूपों की पूजा प्रागैतिहासिक युग में प्रचलित थी। चार का अंक भी स्वास्तिक का प्रतीक रूप है।[5]

सिन्धु घाटी सभ्यता में भी तंत्र व तांत्रिक कला रूपों का अंकन हुआ है जिसका प्रमुख साक्ष्य मातृ देवी की मूर्तियाँ व पशुपति शिव की योग मुद्रा वाली मूर्ति है। मोहनजोदडों से प्राप्त एक मोहर में आसन पर पालथी मारकर ध्यान अथवा योग मुद्रा में एक त्रिमुखी मानव आकृति है जिसकी शिरोभूषा त्रिशुल के आकार जैसी है। इस आकृति का वक्ष कई रेखाओं से बनी अंग्रेजी के V अक्षर जैसे डिजाइन से आवश्त है और इसके हाथों में कांस्य नर्तकी के समान कलाई से कन्धे तक चूडियां अथवा कंगन है। इस बैठी, आकृति के दाई ओर एक हाथी और एक बाध तथा बायी ओर एक गैडा और एक महिष है। आसन के नीचे एक हिरण की आकृति भी है। ऊपर एक लेख है। जॉन मार्शन ने इस आकृति को पशुपति कहा है और इसे शिव का एक आदर्श प्रारूप माना है।[6] मूर्तियों के अतिरिक्त लिंग–पूजा और योनि–पूजा का भी प्रचलन था। लेखक वाचस्पति गैरोला ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है। अतएव सिन्धु घाटी में लिंग पूजक, मातृका पूजक सम्प्रदाय थे। लोग माता के रूप में देवी की पूजा करते थें, शिव की पूजा मूर्ति रूप में तथा प्रतीक रूप में होती थी। लिंग व स्वास्तिक इसके प्रतीक थे। इसी प्रकार योनि देवी का प्रतीक थी।[7]

तांत्रिक मत के विकसित होने के कारण ही ऋग्वैदिक संस्कृति में अनेक देवियों के उल्लेख प्राप्त होते है जिनमें अदिति, पृथ्वी और सरस्वती प्रमुख है उपनिशदों और ब्राहम्णों के युग में उमा, अम्बिका, भवानी, भद्रकाली और दुर्गा के नाम आते है।[8] तांत्रिक प्रभाव से सर्प पूजा के चित्र भी उपलब्ध होते है। हड़प्पा में प्राप्त मिटटी की एक तखती पर सांप प्रदर्शित है। इसमें एक देवता के पास फन फैलाये नाग बैठा है और घुटनों के बल बैठे हुये लोग इसकी पूजा कर रहे है। मिटटी की एक ताबीज पर एक चित्र और मिलता है जिसमें एक सांप को पूजा के तौर पर दूध पिलाया जा रहा है।

गुप्तकालीन चित्रकला पर भी तांत्रिक वाद का प्रगाढ प्रभाव पडा। गुप्तकाल में भी सांख्य दर्शन की पुरूष और प्रकृति तथा वेदान्त दर्शन की ब्रह्म और माया सम्बन्धी लिंगीय द्विक–रचना को तांत्रिकवाद का आधार बनाकर पुराणों और तंत्रों का समन्वय स्थापित किया गया। शिव और शक्ति का कार्य पुरूष और प्रकृति के समान माना गया है। गुप्त काल में दुर्गा की पूजा, अनेक नामों, अम्बिका, महिषासुर–मर्दिनी, कात्यायनी, पार्वती, गौरी, भवानी, भगवती व मातृदेवी आदि के द्वारा की जाती थी। सातवाहन युग भी न केवल सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से वरन् धार्मिक विशेष रूप से तंत्रवाद की दृष्टि से कला अपने उच्च वैभव को प्राप्त थी। सातवाहन कालीन कला में मुदाओं त्रिकुट, शटकूट और दशकूट की आकृतियां दर्शनीय है। 'उज्जैनी' तथा 'सूर्य' चिन्हांकित उनकी चतुर्वत मुद्राओं में ''बिन्दु' और स्वास्तिक की संयोजना और उनकी वतुर्लाकार एवं वर्गाकार बनावट निश्चित ही सातवाहनों की कला प्रियता की परिचायक व तांत्रिक प्रवृति का परिणाम है। [9]

इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय कला का अवलोकन करने पर एक तथ्य मिथुन प्रतीकों का सर्वाधिक सम्मुख आता है। भारतीय समाज में रति क्रिया को अनुष्ठान माना गया है। कामकला को मुक्ति

की ओर ले जाने वाला संस्कार स्वीकारा गया है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र; में काम कला के जितने आसनों का वर्णन हुआ हैं सम्भवतः उतने ही आसन योग ध्यान के है। काम कला के आसनों में से अनेक खजुराहों, कोणार्क और भुवनेश्वर में आरेखित मिलते है। 'श्रृंगारिक मूर्तियों या मिथुनों की रचना मध्ययुगीन ब्राहम्ण कला और कर्मकाण्ड पर तांत्रिक वज्र और सहजयानी प्रतीकवाद के प्रभाव के कारण हुई है। [10]

अजन्ता गुफाओं और एलोरा की शैव गुफाओं की कला में भी तांत्रिकता का समावेश डा0 राधाकमल मुखर्जी और लेखक गोपाल मधुकर ने सिद्व किया है। जिसकी पुष्टि उन्होंने बौद्ध चित्रों की जातक कथाओं तथा बाह्मण धर्म सम्बन्धी चित्रों में चित्रित कथाओं में से कई चित्रों का उदाहरण देकर की है। गुफा सं0 एक में 'मार विजय' के चित्र में अंकित राक्षस, उनकी भयानकता, नीचे कोने पर अंकित एक हरा राक्षस व एक अन्य राक्षस के मुॅह से निकलता सर्प और बुद्ध के पास ही मारकन्यायें जो मन लुभाने के प्रयत्नत में लगी हुई है। ये सभी राक्षस बुराइयां और बुरी भावनाओं के प्रतीक है। मारकन्यायें कामुकता, भोग विलास और मोह कामना का प्रतीक हैं। गुफा सं0 2 में 'बुद्ध जन्म' के साथ ही उत्तर दिशा की ओर सात पग धरती पर चले थे, अंकित है। धरती पर जहाँ भी उनके पग रखे गये वहाँ कमल पुष्प खिल उठे। यह सात पग और सात कमल पुष्प महापुरूष के जन्म, उनके व्यक्तित्व और उनके श्रेष्ठ कर्तव्य के प्रतीक है। वे स्वंय (भगवान बुद्ध) सातवें पग पर रूक कर कहते है कि ''मै इस जगत में मुख्य हूॅ[10] इसी प्रकार अन्य जांतक कथाओं में जीवन को सुगम, सुखद और समार्थ्यवान बनाने की प्रेरणा प्राप्त होती है जो कि तांत्रिक पद्धति का मुख्य ध्येय रहा है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय कला का अवलोकन करने पर एक तथ्य मिथुन प्रतीकों का सर्वाधिक सम्मुख आता है। भारतीय समाज में रति क्रिया को अनुष्ठान माना गया है। कामकला को मुक्ति की ओर ले जाने वाला संस्कार स्वीकारा गया है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र; में काम कला के जितने आसनों का वर्णन हुआ हैं सम्भवतः उतने ही आसन योग ध्यान के है। काम कला के आसनों में से अनेक खजुराहों, कोणार्क और भुवनेश्वर में आरेखित मिलते है। 'श्रृंगारिक मूर्तियों या मिथुनों की रचना मध्ययुगीन ब्राहम्ण कला और कर्मकाण्ड पर तांत्रिक वज्र और सहजयानी प्रतीकवाद के प्रभाव के कारण हुई है।[11] इसी तांत्रिक प्रभाव के कारण सुरा सुन्दरियों, अप्सराओं, नायिकाओं के चित्र या मूर्ति प्रतीको द्वारा विश्वमोहिनी महामाया की अभिव्यक्ति हुई है। 'मध्ययुगीन मन्दिरों के हर आले में, हर कोने में, दीवार, आधार और शीर्षो मे सभी स्थानों पर इस कला के आदर्श दिखई पडते है। कही वह दर्पण में मुख विहार रही है, कहीं वह गेंद उछाल रही है, कही वह अपने स्तन छू रही है, कही श्रृंगार कर रही है ऐसा लगता है मानों वह अपनी छवि और कांति में मग्न अपने निकट के देवता या उपासकों की ओर से भी बेसुध है। ''पुतलियों का प्रायः अभाव उसकी अन्तर्मुखता और तुरीयावस्था का प्रतीक है। यह सर्वव्यासी शाक्ति है, महामाया है, विश्वमोहिनी है। वह आनन्द और ज्ञान, प्रकाश और अन्धकार दोनों है उसका शरीर विश्व की भौतिकता भी है, और स्वर्ग व नरक का इंद्रियातीत, सुक्ष्मं तत्व भी है।'' वह सारभूत सत्त है जो विश्वमाया के रूप में सभी जीवों को इच्छा की बेडियों में जकडे हुये है, और जो अलौकिक ज्योति भी है।

सातवीं–आठवीं शताब्दियों के दौरान, धर्मपाल (776–810) और देवपाल (810–850) के शासनाकालों में पूर्वी भारत में संस्कृति और कला का बौद्ध पुनरूत्थान हुआ है इन्ही शताब्दियों में नालन्दा में निम्न नवीन

इस्ट देवियों की पूजा शुरू हुई। अपराजिंता, वज्रशारदा, वर्ताल्ली, वदाली, वराली, वराहमुखी, तारा व पर्णशबरी। इसी काल के तांत्रिक इष्ट देव थे– वज्रपाणि, मंजुवर, अथवा मंजु श्री, यमान्तक, त्रैलोक्य–विजय, हेरूक, जम्भल और मारीची। इन्हीं शताब्दियों के दौरान, बौद्ध मठों तथा अन्य विद्यापीठो मे प्रचलित वज्रयान तांत्रिकवाद ने तिब्बत को भी प्रभावित किया। इस दिशा में बंगाल के एक प्रकाण्ड विद्वान और नालन्दाविहार के प्रधानाचार्या–शान्तरक्षित ने 'तव्व–संग्रह' की रचना की। उन्होने हिन्दू और बौद्ध तांत्रिक दर्शन प्रणालियों का गहन अध्ययन किया और कई अन्य महत्वपूर्ण वज्रयान ग्रन्थों की रचना की। इस समय तिब्बत में बौद्ध तांत्रिकवाद की स्थापना करने वाले वज्र और सहज के अनेक आचार्य बंगाल–निवासी थे। इसी तांत्रिक विचारधारा के फैलने से बंगाल, असम, नेपाल और तिब्बत के बीच प्रगाढ़ आध्यात्मिक और सांस्कृतिक अन्तरंगता स्थापित हुई, इसी कारण तंत्र कला के नमूने असम, नेपाल, तिब्बत से भारी संख्या में प्राप्त हुये है। जिनका प्रकाशन अजीत मुकर्जी की 'तंत्र आर्ट' तन्त्रासन' व फिलिप राडसन की 'द आर्ट ऑफ 'तंत्र; में मुख्य रूप से हुआ है परन्तु मध्ययुगीन कला में तंत्र कला के अमूर्त व ज्यामितीय रूपाकारों के स्थान पर तांत्रिकवाद की प्रबल कल्पना ने और उसके तत्व ज्ञान ने पूरे देश में एक रोमांटिक अभिव्याजंनावादी कला को जन्म दिया, जो असाधारण लालित्य, ओज और कल्पना प्रदर्शित करती है। इसके अंग 'साधनमाला' और विष्णुधमोत्तरम' में दिये गये है जिनमें ध्यान पूजा और कलात्मक सृजन के लिये सौ देवियो और देवताओं के रूपों, गुणों और मुद्राओं की व्यवस्था की गयी है। तांत्रिक वाद की सृष्टि और विनाश जीवन और मरण, सुन्दर और रौद की सहचरी शाक्तियों की उर्जस्वी कल्पना से और भौतिक, विषयी जीवन में दिव्य तव्व की व्यापकता की धारणा से, भोग और विराग, सुन्दर और सत्य के बीच की खाई फिर से पट गई।[12]

पाल तथा सेन वंश के आगे तांत्रिक प्रभाव उत्तरोत्तर जैन, राजस्थानी और पहाड़ी शैली में अपनी चरम अवस्था में दृष्टिगोचर होता है। वस्तुतः प्राचीन भारतीय कला में तंत्र कला का क्षेत्र असीमित है। विभिन्न विद्वानों ने तंत्र के प्रसार और उसकी व्यापकता को विभिन्न भारतीय धर्मो और सम्पद्रायों में विद्यमान पाया है और भारतीय कला ने, जो सदैव धर्म से अनुप्राणित रही है, तांत्रिक विचारधारा पर आधारित हो समय–समय पर अभिव्यक्ति पायी है इसमें विशेष यह है कि उसका स्वरूप तत्कालीन सामाजिक प्रभावों के कारण भिन्न–2 रहा है उदाहरणार्य–आदि काल में मात्र कुछ प्रतीक व चिन्ह ही इस कला से सम्बद्व है। आगे आने वाली शैलियों में तांत्रिक देवी देवताओ, विशेष रूप से शिव शक्ति, मातृ देवी अर्थात पार्वती के विभिन्न रूप, ब्रह्मा, विष्णु आदि की प्रतिमायें अंकित की गयी है। तंत्र कला के उत्तरोत्तर विकास क्रम में 17वीं, 18वीं व 19वीं शती के चित्र विविधता युक्त है जो प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते है। एवं जिनका तांत्रिक साधना से सम्बन्ध भी रहा है।

विभिन्न धर्मों पर तांत्रिक प्रभाव– तंत्रवाद एक सशक्त धार्मिक आन्दोलन था जो कि आदिम जादू और उच्च विकसित आध्यात्मिक विचारों के सम्मिलन से निसृत हुआ। तांत्रिक क्रियायें उपलब्ध तांत्रिक ग्रंथो से भी अधिक प्राचीन है और लगभग सभी धार्मिक सम्प्रदायों में इसका प्रभाव भी अति प्राचीन काल से ही रहा है। जैसे कि प्रागौतिहासिक चित्रो में जो प्रतीकात्मकता लक्षित होती है। वह निश्चय ही आदिम मानव की आस्था व विश्वास की कहानी कहती है, वास्तव में तंत्र जीवन जीने की सरल विधि को वर्णित

करते है। आगे चलकर धार्मिक विकास के प्रमुख केन्द्र के रूप में सिन्धू घाटी की सभ्यता का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हड़प्पा व मोहनजोदडों नामक प्रमुख नगरों से प्राप्त मातृ देवी व पशुपति (शिव) की पूजा उपासना के पीछे तांत्रिक भावना का विशेष योगदान रहा जिसमें कि वहाँ से प्राप्त मोहरों व धार्मिक वस्तुओं पर बनी मातृदेवी की लघु मूर्तियों की झाँकियाँ व विशेष रूप से कहाँ से प्राप्त बडे–2 पत्थर से बने लिंग व योनि आकार तांत्रिक अवशेषों की जादुई जननक्षमता सम्बन्धी धार्मिक अनुष्ठान की झलक प्रदान करते है।[13] जोकि आदिम (प्राम्भिक) तंत्रवाद और इसके देवी–देवताओं को आधार प्रदान करते है उदाहरणार्थ–हडप्पा से प्राप्त एक मुद्रा की मातृ मूर्ति में योनि से निकलता हुआ एक पौधा दिखाया गया है जो मातृत्व का स्फुट प्रतीक है[14] अर्थात ब्रहाण्ड रचना का बीज तत्व जोकि तांत्रिक प्रत्यय को प्रदर्शित करता है। मातृ–मूर्तियों की संख्या से प्रकट होता है कि मातृका पूजन का लोगों के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। सिन्धु घाटी के विस्तृत क्षेत्र में उनकी प्राप्ति से यही प्रकट होता है कि उनका निर्माण धार्मिक पूजा के लिये किया गया था। तथा इस धार्मिक पूजा पद्धति पर तांत्रिक प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है क्योंकि शिव व शक्ति पूजा उपासना तांत्रिक विचारधारा का प्रमुख प्रत्यय है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की मोहरों पर उत्कीर्ण लिंग और योनि स्वरूप, जोकि बाद में हिन्दूधर्म में अत्यधिक प्रसिद्व तांत्रिक प्रत्यय रहा, तंत्र के आदि प्ररूप को प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त पशुओं के मध्य बनी सिर पर सिंग युक्त मुकुट धारण किये आकृति त्रिमुखी देवता की है, जो कई मोहरों पर योगी की मुद्रा में विराजमान उत्कीर्ण है, वह भारतीय प्रमुख तांत्रिक देव मातृ देवी के पति शिव का आदि प्ररूप मानी गयी है।[15]

भारत की वैदिक पूर्व धार्मिक पूजा पद्धति में मातृ देवी और लिंग योनि अर्थात लैगिंक द्वैतवाद के रूप में पुरूष प्रकृति का सिद्वान्त तथा योग की महत्व, जिसमें की मानव शरीर को ब्रह्माण्ड के रहस्य का केन्द्र माना गया है, को समाहित किया गया था। इन सभी सिद्वान्तों में एक पारस्परिक सम्बन्ध है और एक अभिन्न धार्मिक प्रत्यय तथा जटिल पूजा पद्धति को तव्व युक्त होने से बाद में यह तांत्रिक परम्परा के नाम से जाना जाने लगा। इस प्रकार वैदिक युग में नारी शक्ति की प्रमुखता युक्त तांत्रिक विचाराधारा के विपरीत एक नयी संश्लेषित विचाराधारा ने जन्म लिया जिसमें कि समाज के प्रभावी वर्ग द्वारा तांत्रिक तत्वो को अभ्यास में लाया गया। उमा, अम्बिका, काली, दुर्गा आदि देवियां वैदिक ग्रंथो में तांत्रिक देवियों के रूप में प्रसिद्व थी और ये मातृ देवियाँ तत्कालीन प्रथक–2 जनजातियों में भिन्न–भिन्न नामों से अभिहित की गयी जो बाद में पशुपति शिव की पत्नी के रूप में जानी गयी। वजसैन्यी संहिता में अम्बिका को रूद्र की बहन बताया गया है। तैत्तरीय अरण्यक में उसे रूद्र की पत्नी वर्णित किया गया है। इसके बाद वैरोकनी, दुर्गी, कात्यायनी और कन्याकुमारीका प्रंसग आता है। हिमावत की पुत्री–उमा को कैनोपनिषद में वर्णित किया गया है। बाद में हेमावती, पार्वती और दुर्गा के रूप में पहचानी गयी है। इन देवयिों के नाम इनके दुर्गम पर्वतीय क्षेत्रों से सम्बन्धित होने को दर्शाते है। काली कराली, भद्रकाली और ऐसी ही तांत्रिक देवियां वैदिक ग्रंथी में सम्मिलित की गयी। तत्पश्चात पूर्व वैदिक काल की मातृ देवी की पूजा पद्धति भी उत्तर ऋग्वैदिक युग में कषशि आधारित अर्थव्यवस्था के प्रसार के कारण पुनः प्रचलित हुई। खेतों की उर्वरकता शाक्ति को बदाने के लिये भी अंसख्य धार्मिक क्रिया कलाप प्रारूपित

किये गये मुख रूप से काम क्रियाओं ने वैदिक ग्रंथों में स्थापन ले लिया।। तांत्रिक पद्वति के काम कृत्यों के अतिरिक्त, षट्कर्म जैसे–मारण, वैशीकरण आदि स्पष्ट रूप से वैदिक साहित्य में भी विभिन्न स्थानों पर उल्लेखित है। अर्थववेद में जादू–टोने का अभ्यास अधिकतर तंत्रो के समरूप है।[16]

इस प्रकार वैदिक परम्परा में सांसारिक ज्ञान के अभाव की पूर्ति तंत्रो द्वारा की गयी। कर्मशील लोगो के लिये तंत्र मात्र एक धार्मिक प्रणाली से भी अधिक था। उनके लिये ज्ञान का पर्याय सांसारिक ज्ञान था, जो उन्हें उनके बहुआयामी व्यवहारिक और उत्पादक कार्यो के लिये निर्देशन प्रदान करता था। तंत्र उन्हें व्यवसायिक सफलता और सन्तोष प्रदान करने का साधन था परन्तु समय व्यतीत होने के साथ तंत्र भी जाति की कट्टरता के साथ वर्ग (सम्प्रदाय) प्रधान हो गया और इसके ग्रंथ उच्च वर्ग के हाथ में चले गये जिन्होनें इसके वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान को दबाने और नष्ट करने का प्रयास किया और इसे भ्रामक बना दिया। उत्तर वैदिक काल में श्वेताश्वतर उपनिषद जोकि चौथी–पॉचवी शती ईसा पूर्व का है में जीवन और ब्रह्मण्ड की उत्पप्ति के विषय में आठ तथ्य सामने आते है कि ये ईश्वर काल स्वभाव, निर्यात, माद्रच्छ, भूत, योनि और पुरूष है। जिनसे ब्रहमाण्ड और जीव की उत्पत्ति मानी गयी है। सुस्त्रुतसंहिता जोकि चौथी शती की अर्थात श्वेताश्वतर से आठ सौ वर्ष बाद की रचना है। श्वेताश्वतर में पुरूष को छोडकर भूत आर योनि को संयुक्त रूप से प्रकृति के रूप में माना गया है। इन अनेको प्रत्ययों के अतिरिक्त तंत्रो के अनुसार कुण्डलिनी मानव शरीर की आन्तरिक आध्यात्मिक शाक्ति है जिसे साधना द्वारा जगाकर मानव दैविक स्थिति में पहुँच सकता है इसी से जीव शिव बन जाता है।

तंत्र न केवल वेदो व उपनिषदों से सादृश्यता रखते है वरन बहुत से पुराण भी तंत्रो से पर्याप्त प्रभावित है। यह प्रभाव सर्वाधिक भागवत पुराण में दृष्टिगोचर होता है। इस पुराण में विष्णु की उपासना तांत्रिक निमयों के आधार पर की गयी है। यह पुराण विष्णु की तांत्रिक पूजा पद्धति, तांत्रिक दीक्षा और कुछ तांत्रिक विधियों को प्रस्तुत करता है। पुराणों की भांति तांत्रिक पूजा उपासना में कवच व मंत्रो का पर्याप्त प्रयोग है। यद्यपि तांत्रिक और पौराणिक पद्धतियों के मध्य एक बड़ी भिन्नता यह है कि तांत्रिक उपासक स्वंय का पूजित देवता के साथ एकाकार स्थापित कर लेता है परन्तु पुराणों का अनुयायी ऐसा नही करता। अग्नि पुराण के 27वें अध्याय में तांत्रिक मंत्र और तांत्रिक पूजा पद्धतियां वर्णित हैं। इसमें विश्णु की तीन प्रकार से (वैदिक तांत्रिक व मिश्रिंत) उपासना करने का वर्णन है। निष्कर्षतः तंत्र की प्राचीनता को स्वीकारते हुए विद्वान इसे पांचवा वेद नाम से अभिहित करते है और इनका प्रभुत्व धर्म में वेदो से कम नही रहा।[17] वेद और तंत्र का सम्बन्ध वे वही मानते है जो कि एक वृक्ष का उसकी शाखाओं से होता है अर्थात वेद एक वृक्ष के रूप में है और तंत्र उसकी शाखायें।

वैष्णव धर्म में भी तंत्र की भूमिका को लेकर दो मुख्य विचाराधारायें रही है जिसमे प्रथम मान्यतानुसार तांत्रिक तत्व वैष्णववाद में देवी मां (जो कि बाद में विष्णु की पत्नी मानी गयी) की पूजा–उपासना द्वारा प्रारम्भ हुआ। जिनमे श्री, लक्ष्मी, महाश्वेता (सूर्य की पत्नी) की उपासना की गयी। महाभारत में भी विष्णु से सम्बन्धित देवियों में भू और पृथ्वी देवियाँ थी। महाभारत के दुर्गाशास्त्र मे यही महादेवी नारायण की पत्नी कृष्ण की छोटी बहन के रूप में वर्णित है जिन्होने नन्द के घर बड़ी पुत्री के रूप में जन्म लिया था। गुप्त काल में सभी देवियां विष्णु से सम्बन्धित मानी गयी। दूसरी विचाराधार के

अनुसार वैष्णववाद पर तंत्र का प्रभाव अन्य धार्मिक मतों की भांति स्पष्ट है क्योंकि वैष्णव धर्म के अनुसार कृष्ण और राधा दो परम सत्ता और परम यथार्थ का प्रकटीकरण है। आधुनिक विद्वानों का मानना है कि कृष्ण व राधा तंत्र के शिव–शाक्ति का दूसरा रूप है। राधा को कृष्ण की हलादिनी शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है अतएव तंत्र के शिव शाक्ति से ही वैष्णव धर्म के कृष्ण राधा का स्वरूप अवतरित है इसके अतिरिक्त वैष्णव धर्म के पंचरात्र कर्म षाक्त तंत्राो से बहुत साम्य रखते है। तंत्र का प्रभाव न केवल वैष्णववाद पर आया है वरन् वैष्णववाद ने भी बदले में तंत्रो को प्रभावित किया है। इसके प्रमुख तंत्र में 'चैतन्य' का नाम आता है कुलार्णव का एक भाग जो 'ईशान' संहिता' नाम से जाना जाता है। चैतन्य के दैवत्व को निश्चयपूर्वक स्वीकार करता है। गुढ़ावतार, जो कि विश्वसार या विश्वसारोदार का एक भाग कहा गया है, में चैतन्य को विष्णु का अवतार माना गया है। 'उर्धवाम्नाया संहिता' में चैतन्य ने बुद्ध का स्थान विष्णु के अवतार रूप से लिया है। ब्रहमयमला और कृष्णयमला का कुछ भाग चैतन्यकल्प नाम से जाना जाता है। बुद्ध और महावीर जनपदों के महाजनपदों में विकसित होने के युग में अवतरित हुये थे उस समय की बदलती उपद्रवी परिस्थितियों का प्रभाव बौद्ववाद और जैनवाद के सिद्वान्तों परिलक्षित होता है इसीलिये बुद्ध और महावीर के सिद्वान्त उस समय की सामाजिक व नैतिक समस्याओं से सम्बन्धित थे। इन आस्थावान बौद्धिक और नीतिपरक प्रणालियों में तांत्रिक विचारधाराओं व कृत्यों ने भी स्थान ग्रहण कर लिया। वैदिक योग पद्धति के साथ–2 आदिम देवी मां की पूजा–उपासना पद्धति भी बौद्ध व जैन देवगंणो मे पुनर्जीवित हो गयी।[18] बौद्ध धर्म की तारा देवियां और अन्य देवियां, जैन धर्म की मातृकांय, विद्यादेवियां, योगिनियां आदि आदिम तांत्रिक संश्लिष्ट सिद्धान्त विख्यात नारी सिद्धान्त की छाप लिये हुए है। यद्यपि नारी पूजा–पद्धति सिद्धान्त का जैनवाद और बौद्धवाद से आधारभूत सम्बन्ध नही था फिर भी भारत के धार्मिक इतिहास में इसकी भूमिका के कारण जैन व बौद्ध धर्म में इसे स्वीकृति मिल गयी। इसके अतिरिक्त तांत्रिक प्रभाव के सम्बन्ध में यह भी महत्वपूर्ण है कि बौद्ध ग्रंथ बताते है कि स्वंय बुद्ध ने बहुत से चमत्कार किया थे। जादुई क्रियाओं से विमुखता के बावजूद वह उनका परिहार न कर सके। बुद्ध की कहानियों का ग्रंथ ''महापदान सुत्त'' चमत्कारों से परिपूर्ण है। ग्रंथ पाटीक सुत्त बुद्व की चमत्कारिक शाक्तियों व कार्यो को वर्णित करता है। इस प्रकार बौद्ध ग्रंथो पर भी तांत्रिक प्रभाव अधिक पाया गया है। ललित विस्तार में लिखा है कि बुद्ध आस्फानक योग किया करते थे। बुद्ध के प्रथम गुरू आलाड कालाम थे, जो स्वंय सांख्य दर्शन के एक प्रतिपादक थे। दिद्य निकाय मे बुद्ध ने पंच–काम–गुण–दित्तय–धम्म, निब्बाणवाद, जो कि पांचो इन्दियों की पूर्ण आनन्दावस्था में निर्वाण प्राप्ति का दर्शन है, को सम्मलित किया है जो कि तांत्रिक दर्शन में भी पूर्णतः मान्य है। बौद्व भिक्षुओ द्वारा खोपडी का भीख पात्र के रूप में प्रयोग किया जाना भी तांत्रिक प्रभाव के कारण ही है। मंत्रो की क्षमता में विश्वास रखने के पीछे भी तांत्रिक प्रभाव दिखायी देता है।

शाक्त विचाराधारानुसार मानव शरीर में छः नाडी चक्र (षट्चक्र) स्थित है ये मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्व, और आजणा है। सर्वोच्च प्रमस्तिश्कीय (मूर्धन्य) स्थान सहस्त्रार चक्र का है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में सुषुश्तावस्था में रहती है योग साधना के द्वारा यह कुण्डलिनी शक्ति दो नाड़ियो–इड़ा और पिगला से होते हुये सहस्त्रार चक्र में शरीर के सर्वोच्च क्षेत्र में पहुंच जाती है। जहाँ यह इसके स्त्रोत से मिलकर जाग्रत अवस्था को प्राप्त करती है। बौद्ध तंत्रो में तीन नाड़ी चक्र बुद्ध के

तीन शरीर–धर्म, सम्भोग और रूप ये निर्माण के प्रतीक स्वरूप है एवं एक अतिरिक्त नाड़ी चक्र उष्निश कमल शरीर के मध्य भाग में स्थित है जो कि बुद्ध की वज्रकाय या सहजकाय का प्रतीक है और जो शाक्त सहस्त्रार प्रत्यय के समान वर्णित है। इसके नीचे गर्दन के चारो ओर सम्भग चक्र, हदय के निकट धर्मचक्र और नाक के पास निर्माण चक्र है शरीर में असंख्य नाड़ियां है जिनमें से 32 उपयोगी है जिनमें 3 अत्यन्त उपयोगी है। दो नाड़ियां प्रजणा और उपाय का प्रतीक रूप है, वे सुषुम्ना नाड़ी के बराबर में है और इनके बीच में जिसमें ये दोनो जुड़ जाती है वह सहज या अवधति है शाक्त तंत्रो की कुण्डलिनी शक्ति की भांति बौद्ध तंत्र भी नारी शक्ति, जिसमे कि अग्नि की शाक्ति है जो निर्माण–चक्र में रहती है और जिसे चण्डाली कहते है, को वर्णित करते है। यह चण्डाली तीव्र होते हुये धर्म और सम्भोग चक्र को उत्तेजित करती है और अन्ततः उष्निशा कमल अर्थात सर्वोच्च मुर्धन्य स्थान मे पहुंच जाती है। और फिर अपने स्थान पर वापस आ जाती है इस प्रकार बौद्ध ग्रंथो में अधिकांश तांत्रिक प्रत्यय वर्णित मिलते है श्री वैष्णव पंथ के महानतम् व्याख्याता रामनुज, (8016–1137) ने ब्रहमसूत्र की टीका 'श्री भाष्य' नाम से की और वेदान्त शैली में वैष्णववाद के मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या की।

उपर्युक्त बृतान्त से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से लेकर मध्य काल तक वैष्णव, जैन, बौद्ध शैव, शाक्त सभी मतो पर तांत्रिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इतना ही नही आज भी प्रचलित भिन्न धर्मों में हम तांत्रिक कर्मकाण्ड़ों जैसे कि शट्कर्मो, योग साधना, पंचमकार आदि के महत्व को मानते हुये समाज में व्याप्त पाते है। हमारे प्राचीन ग्रंथ, वेद, उपनिषद व महायोगियों द्वारा रचे गये ग्रंथो पर तांत्रिक प्रभाव होने के कारण यह परम्परा हमे आज भी समाज में दो रूपों में व्याप्त दिखायी देती है। प्रथम जो हमें योग साधना के द्वारा ईश्वर को एकाकार अर्थात परम शाक्तियों व सिद्धियों के मार्ग पर अग्रसर करती है तो दूसरी विभिन्न कर्मकाण्ड़ों के द्वारा समस्त भौतिक आनन्द को भोगते हुये जादू–टोने की भावना की ओर अग्रसर करती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. *त्रिवेदी, डॉ0 गोपीचन्द्र मधुकर–भारतीय चित्रकलाः ऐतिहासिक संदर्भ, 1999 पृं0सं0–30*
2. *गैरोला, वाचस्पति–इण्डिमन आर्कियोलॉजी 1957 पृं0 सं0–27*
3. *जेम्स हैस्टिंग्स–इन्सइकलोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स खण्ड–1 पृं0 सं0–825*
4. *अग्रवाल, डॉ0 गिर्राज किषोर–कला और कलम, अलीगढ़–2002 पृं0सं0–22*
5. *त्रिवेदी, डॉ0 गोपाल चन्द्र मधुकर–भारतीय चित्रकला–ऐतिहासिक संदर्भ 1999 पृं0सं0–37*
6. *मार्षलसर जॉन–मोहनजोदड़ो एण्ड द इण्डूज सिवलाइजेषन लन्दन–1931, पृ0सं0–52*
7. *वही पृ0सं0–11*
8. *मुखर्जी राधाकमला–भारत की संस्कृति और कला, दिल्ली–1959 पृ0सं0–507।*
9. *गैरोला वाचस्पति–भारतीय संस्कृति और कला, लखनऊ, 1973 पृ0सं0–357*
10. *मुखर्जी राधाकमल–भारतीय कला प्रतीक पृ0सं0– 42*
11. *मुखर्जी राधाकमल–भारतीय कला–प्रतीक और प्रतिमान, दिल्ली 1967 पृ0सं0– 43*

12. *मुखर्जी राधाकमल–भारतीय संस्कृति और कला 1959 पृ0सं0–238–239*
13. *भट्टाचार्या, एन0एन0–हिस्ट्री ऑफ द तांत्रिक रिलीजन, नई दिल्ली 1982 पृ0सं0–159*
14. *डॉ0 अग्रवाल, वासुदेव शरण–भारतीय कला पृ0सं0–28*
15. *भट्टाचार्या, एन0एन0 हिस्ट्री ऑफ द शाक्त रिलीजन, नई दिल्ली 1974 पृ0सं0–18*
16. *भट्टाचार्य, एन0एन0 हिस्ट्री ऑफ तांत्रिक रिलीजन, नई दिल्ली 1982 पृ0सं0–163*
17. *बैनर्जी एस0सी0–तंत्र इन बंगाल, नई दिल्ली 1978 पृ0सं0– 21*
18. *भट्टाचार्या, एन0एन0–हिस्ट्री ऑफ द षाक्त रिलीजन नई दिल्ली पृ0सं0–38*